17. विश्ववर्मन का गंधार प्रस्तर अभिलेख, जान फेयफुल, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 961।
18. वृहत्कल्प भाष्य, भाग–2, गाथा 1061।
19. संघदासगणि, बसुदेवहिण्डी, 1/295।
20. वृहत्कल्प भाष्य, भाग–2, गाथा 1239।
21. वही
22. विश्ववर्मन का गंधार प्रस्तर लेख, जान फेयफुल, भारतीय अभिलेखों का संग्रह, पृ0 96।
23. रुद्रदामन जुनागढ़ शिलालेख, पंक्ति 15, नारायण ए.के., प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, पृ0 43।
24. स्कन्दगुप्त का जुनागढ़ शिलालेख, वही, पृ0 43।
25. खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख, पंक्ति 6, वही, पृ0 43।
26. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 3/9/51

*****

लेश्या स्वरूप एवं विमर्श

डॉ. योगेश कुमार जैन
डॉ. श्वेता जैन

प्राकृत पंचसंग्रह में लेश्या को प्रतिपादित करते हुये आचार्य कहते हैं कि–

लिप्पइ अप्पीकीरइ एयाए णियय पुण्ण पावं च।
जीवो त्ति होइ लेसा लेसा गुणजाणयक्खाया।।
जह गेरुवेण कुड्डो लिप्पइ लेवेण आमपिट्टेण।
तह परिणामों लिप्पइ सुहासुहयत्ति लेव्वेण।[1]

अर्थात् जिसके द्वारा जीव पुण्य–पाप से अपने को लिप्त करता है, उनके आधीन करता है उसको लेश्या कहते हैं। जिस प्रकार आमपिष्ट से मिश्रित गेरू–मिट्टी के लेप द्वारा दीवाल लीपी या रंगी जाती है, उसी प्रकार शुभ और अशुभ भाव रूप लेप के द्वारा जो आत्मा का परिणाम लिप्त किया जाता है, उसको लेश्या कहते हैं।

धवलाकार कहते हैं कि– **"लिम्पतीति लेश्या। कर्मभिरात्मानमित्य–ध्याहारापेक्षित्वात्। अथवात्मप्रवृत्ति संश्लेषणकारी लेश्या। प्रवृत्ति भाब्दस्य कर्म पर्यायत्वात्।"**[2] अर्थात् जो लिम्पन करती है उसको लेश्या कहते हैं। जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती है उसको लेश्या कहते हैं। अथवा जो आत्मा और कर्म का सम्बन्ध करने वाली है उसको लेश्या कहते हैं। यहाँ पर 'प्रवृत्ति' शब्द कर्म का पर्यायवाची है।

भावले□या और द्रव्यले□या

कषाय से अनुरंजित जीव की मन, वचन, काय की प्रवृत्ति भावलेश्या है। आगम में इनका वर्णन कृष्णादि छह रंगों द्वारा निर्देशित किया गया है। इनमें से तीन शुभ व तीन अशुभ होती हैं। राग व कषाय का अभाव हो जाने से मुक्त जीवों को लेश्या नहीं होती। शरीर के रंग को द्रव्यलेश्या कहते हैं। देव व नारकियों में द्रव्य व भाव लेश्या समान

होती है, पर अन्य जीवों में इनकी समानता का नियम नहीं है। द्रव्य लेश्या आयुपर्यन्त एक ही रहती है पर भाव लेश्या जीवों के परिणामों के अनुसार बराबर बदलती रहती है। कषाय के उदय से अनुरंजित मोह और योग की प्रवृत्ति को भावलेश्या और शरीर के पीत–पद्मादि वर्णों को द्रव्यलेश्या कहते हैं। द्रव्यलेश्या पुद्गल विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से होती है। अतः आत्मभावों के प्रकरण में उसका यहाँ ग्रहण नहीं किया है। भावलेश्या कषाय के उदय से अनुरंजित योगवृत्ति का निमित्त पाकर होती है, इसलिए कषाय औदयिकी कही जाती है।

लेश्याओं का स्वरूप–

कषाय से अनुरंजित मोह और योग के परिणाम को लेश्या कहते हैं। लेश्या मुख्यरूप से द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार की है। भावलेश्या छह प्रकार की है। लेश्या के भेदों का वर्णन करते हुए पंचाध्यायीकार कहते हैं कि –

लेश्या षडेव विख्याता भावा औदयिकाः स्मृताः।
यस्माद्योगकशायाम्यां द्वाभ्यामेवो दयोद्भवाः।।[3]

लेश्याओं के छह भेद हैं–1. कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. पीत 5. पदम 6. शुक्ल। इन्हीं छह भेदों से लेश्यायें प्रसिद्ध हैं। लेश्यायें भी जीव के औदयिक भाव हैं, क्योंकि लेश्यायें योग और कषायों के उदय से होती हैं। कर्मों के उदय से होने वाले आत्मा के भावों का नाम ही औदयिकभाव है। योग और कषाय के समुदाय का नाम लेश्या है तथा यह लेश्या ही प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इन चारों प्रकार के बन्ध का कारण है।

(i) कृष्णलेश्या :

चंडो ण मुचइवेरं, भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खणमेयं तु किण्हस्स।।[4]

कृष्णलेश्या वाले जीव के भाव अशुभतम् अर्थात् मूल से नाश करने वाले भाव होते हैं। कृष्ण लेश्या वाला जीव तीव्र क्रोध करता है, बैर को नहीं छोड़ता है, युद्ध के लिए सदा तत्पर रहता है, दया–धर्म से रहित होता है, दुष्ट होता है और किसी के वश में नहीं आता है।

(ii) नीललेश्या :

मंदोबुद्धिविहीणो, णिव्विणाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा, आलस्सो चेव भेज्जो य।।
णिद्दावंचण बहुलो, धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य।
लक्खणमेयं भणियं, समासदो णीललेस्सस्स।[5]

जो जीव मंद अर्थात् स्वच्छन्द होता है, वर्तमान कार्य करने में विवेक रहित होता है, कला–चातुर्य से रहित होता है, पंचेन्द्रिय के विषयों में लम्पट होता है, मानी, मायावी, आलसी, भीरु तथा दूसरों का अभिप्राय सहसा न जानने वाला, अति निद्रालु, दूसरों को ठगने में अतिदक्ष हो और धन–धान्य के विषय में जिसकी अतितीव्र लालसा हो, वह नील लेश्या वाले परिणाम से युक्त होता है। ऐसा आसक्त जीव नीललेश्या के साथ धूम–प्रभा नरक पृथ्वी तक जाता है।

(iii) कापोतलेश्या :

रूसइ णिंदइ अण्णे, दूसइ बहुसो य सोय भय बहुलो।
असुयइ परिभवइ परं, पसंसये अप्पयं बहुसो।।
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यिव परं पि भण्णंतो।
थूसइ अभित्थुवंतो, ण य जाणइ हाणि–वड्ढिं वा।।
मरणं पत्थेइ रणे, देइ सुबहुगं वि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जाकज्जं, लक्खणमेयं तु काउस्स।।[6]

अर्थात् दूसरे के ऊपर क्रोध करना, दूसरों की निन्दा करना, अनेक प्रकार से दूसरों को दुःख देना अथवा दूसरों से बैर करना, अधिकतर शोकाकुलित रहना तथा भयग्रस्त रहना या हो जाना, दूसरों के ऐश्वर्यादि को सहन न कर सकना, दूसरे का तिरस्कार करना, अपनी

नाना प्रकार से प्रशंसा करना, दूसरों के ऊपर विश्वास न करना, अपने समान दूसरों को भी मानना, स्तुति करने वाले पर संतुष्ट हो जाना, अपनी हानि–वृद्धि को कुछ भी न समझना, रण में मरने की प्रार्थना करना, स्तुति करने वाले को खूब धन देना, अपने कार्य–अकार्य की कुछ भी गणना न करना, ये सब कापोत लेश्या वाले के चिह्न हैं।

मात्सर्य, पैशून्य, परपरिभव, आत्मप्रशंसा परपरिवाद, जीवन नैराश्य, प्रशंसक को धनदेना, युद्ध मरणोद्यम आदि कापोतलेश्या के कारण हैं।

(iv) पीतलेश्या :

जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसयं च सव्वसमपासी।
दयादाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स।।[7]

अर्थात् अपने कार्य–अकार्य, सेव्य–असेव्य को समझने वाला हो, सबके विषय में समदर्शी हो, दया–दान में तत्पर हो, मन–वचन–काय के विषय में कोमल परिणामी होना, पीतलेश्या वाले के चिह्न हैं।

(v) पद्मलेश्या :– (Padma, pink leshya)

चागी भद्दो चोक्खो, उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो, लक्खणमेयं तु पम्मस्स।।[8]

जो दान देने वाला हो, भद्रपरिणामी हो जिसका उत्तम कार्य करने का स्वभाव हो, कष्टरूप तथा अनिष्टरूप उपद्रवों को सहन करने वाला हो, मुनिजन गुरुजन आदि की पूजा में प्रीतियुक्त हो, ये सब पद्मलेश्या वाले के लक्षण हैं।

(vi) भुक्ललेश्या :

ण य कुणइ पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो ये सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा, णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स।।[9]

अर्थात् पक्षपात न करना, निदान को न बांधना, सब जीवों में समदर्शी होना, इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष न करना, स्त्री–पुत्र–मित्र आदि में स्नेहरहित होना, ये सब शुक्ललेश्या वाले के लक्षण हैं।

इन छहों लेश्याओं वाले जीवों के विचारों के विषय में एक दृष्टान्त भी प्रसिद्ध है–छह पथिक जंगल के मार्ग में जा रहे थे। मार्ग भूलकर वे घूमते हुए एक आम के वृक्ष के पास पहुँच गये। उस वृक्ष को फलों से भरा हुआ देखकर कृष्णलेश्या वाले ने अपने विचारों के अनुसार कहा कि मैं इस वृक्ष को जड़ से उखाड़कर इसके आम खाऊँगा। नीललेश्या वाले ने अपने विचारों के अनुसार कहा कि मैं जड़ से तो इसे उखाड़ना नहीं चाहता, किन्तु स्कन्ध (जड़ के ऊपर का भाग) से काटकर इसके आम खाऊँगा। कापोतलेश्या वाले ने अपने विचार के अनुसार कहा कि मैं बड़ी–बड़ी शाखाओं को गिराकर आम खाऊँगा। पीतलेश्या वाले ने अपने परिणाम अनुसार कहा कि मैं बड़ी–बड़ी शाखाओं को तोड़कर समग्र वृक्ष की हरियाली को क्यों नष्ट करूँ, केवल इसकी छोटी–छोटी डालियों को तोड़कर ही आम खाऊँगा। पद्मलेश्या वाले ने अपने विचारों के अनुसार कहा कि मैं तो इसके फलों को ही तोड़कर खाऊँगा। शुक्ललेश्या वाले ने अपने विचारों के अनुसार कहा कि तुम तो फलों के खाने की इच्छा से इतना बड़ा आरम्भ (पाप) करने के लिए उद्यत हो। मैं तो केवल वृक्ष से स्वयं टूटकर गिरे हुए फलों को ही बीनकर खाऊँगा।

भेद–प्रभेद–

इस प्रकार छहों लेश्याओं के स्वरूप वर्णन के उपरान्त लेश्याओं के अंशों (भेदों) का कथन इस प्रकार है :–

लेस्साणं खलु अंसा, छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया।
आउगबंधण जोगा, अट्ठट्ठवगरिसकालभवा।।[10]

अर्थात् लेश्याओं के कुल छब्बीस अंश हैं, इनमें से आठ अंश जो कि आठ अपकर्ष काल में होते हैं, वे ही आयुकर्म के बन्ध के योग्य होते हैं।

छहों लेश्याओं के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद की अपेक्षा अठारह भेद होते हैं। इनमें आठ अपकर्षकाल सम्बन्धी अंशों के मिलाने पर छब्बीस भेद हो जाते हैं। जैसे किसी कर्मभूमि के मनुष्य या तिर्यंच की

भुज्यमान आयु का प्रमाण छह हजार पांच सौ इकसठ वर्ष है। इसके तीन भाग में से दो भाग बीतने पर और एक भाग शेष रहने पर, इस एक भाग के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त प्रथम अपकर्ष का काल कहा जाता है। इस अपकर्ष काल में परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है। यदि यहाँ पर बन्ध न हो तो अवशिष्ट एक भाग के तीन भाग में से दो भाग बीतने पर और एक भाग शेष रहने पर उसके प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त द्वितीय अपकर्ष काल में परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है। यदि यहां पर भी बन्ध न हो तो इसी प्रकार से तीसरे अपकर्ष में होता है और तीसरे में भी न हो तो चौथे, पांचवें, छठें, सातवें, आठवें अपकर्ष में से किसी भी अपकर्ष में परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है। परन्तु फिर भी यह नियम नहीं है कि इन आठ अपकर्षों में से किसी भी अपकर्ष में आयु का बन्ध हो ही जाये। केवल इन अपकर्षों में आयुकर्म के बन्ध की योग्यता मात्र बताई गई है। इसलिए यदि किसी भी अपकर्ष में बन्ध न हो तो असंक्षेपाद्धा (भुज्यमान आयु का अन्तिम आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाणकाल) से पूर्व के अन्तर्मुहूर्त में अवश्य ही आयु का बन्ध होता है, यह नियम है।

भुज्यमान आयु के तीन भागों में से दो भाग बीतने पर अवशिष्ट एक भाग के प्रथम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल को अपकर्ष कहते हैं। इस अपकर्ष काल में लेश्याओं के आठ मध्यमांशों में से जो अंश होगा उसके अनुसार आयुशों में से जो कोई अंश जिस अपकर्ष में होगा उस ही अपकर्ष में आयु का बन्ध होगा, दूसरे काल में नहीं।

जीवों के दो भेद हैं–एक सोपक्रमायुष्क दूसरा अनुपक्रमायुष्क। जिनका विषभक्षणादि निमित्त के द्वारा मरण संभव हो उनको सोपक्रमायुष्क कहते हैं और जो इससे रहित हैं उनको अनुपक्रमायुष्क कहते हैं। जो सोपक्रमायुष्क हैं उनके तो उक्त रीति से ही परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है। किन्तु अनुपक्रमायुष्कों में कुछ भेद है, वह यह है कि अनुपक्रमायुष्यों में जो देव और नारकी हैं वे अपनी आयु के अन्तिम छह माह शेष रहने पर आयु के बन्ध करने के योग्य होते हैं। इसमें

भी छह महीना के आठ अपकर्ष काल में ही आयु का बन्ध करते हैं, दूसरे काल में नहीं। जो भोगभूमि के मनुष्य या तिर्यंच हैं, उसकी आयु का प्रमाण एककोटिपूर्व वर्ष और एक समय से लेकर तीन पल्योपम पर्यन्त है। इसमें से वे अपनी–अपनी यथायोग्य आयु के अन्तिम नौ महीना शेष रहने पर उन्हीं नौ महीना के आठ अपकर्षों में से किसी भी अपकर्ष में आयु का बन्ध करते हैं। इस प्रकार ये लेश्याओं के आठ अंश आयु बन्ध के कारण हैं। जिस अपकर्ष में जैसा जो बन्ध हो उसके अनुसार आयु का बन्ध होता है। लेश्याओं के शेष अठारह भेदों का स्वरूप निम्न है :–

अपकर्ष काल में होने वाले लेश्याओं के आठ मध्यमांशों को छोड़कर बाकी के अठारह अंश चारों गतियों के गमन के कारण होते हैं यह सामान्य नियम है। परन्तु विशेष नियम यह है कि शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश से संयुक्त जीव मरकर नियम से सर्वार्थसिद्धि जाता है तथा शुक्ललेश्या के जघन्य अंशों से संयुक्त जीव मरकर शतार–सहस्रार स्वर्गपर्यन्त जाते हैं और मध्यमांशों सहित मरा हुआ जीव सर्वार्थसिद्धि से पूर्व के तथा आनत स्वर्ग से लेकर ऊपर के समस्त विमानों में से यथा–सम्भव किसी भी विमान में उत्पन्न होता है और आनत स्वर्ग में भी उत्पन्न होता है।

पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं।
अवरंसमुदा जीवा, सणक्कुमारं च माहिंदं।।[11]

पद्मलेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव नियम से सहस्रार स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और पद्मलेश्या के जघन्य अंशों के साथ मरे हुए जीव सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। पद्मलेश्या के मध्यम अंशों के साथ मरे हुए जीव सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के ऊपर और सहस्रार स्वर्ग के नीचे–नीचे तक विमानों में उत्पन्न होते हैं। पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव सनत्कुमार–माहेन्द्र स्वर्ग के अन्तिम पटलों में जो चक्रनाम का इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमान है, उसमें उत्पन्न होते हैं। पीतलेश्या के जघन्य अंशों के साथ

मरा हुआ जीव सौधर्म ईशान स्वर्ग के ऋतु (ऋजु) नामक इन्द्रक विमान में अथवा श्रेणीबद्ध विमान में उत्पन्न होता है। पीतलेश्या के मध्यम अंशों के साथ मरा हुआ जीव सौधर्म– ईशान स्वर्ग के दूसरे पटल के विमल नामक इन्द्रक विमान से लेकर सनत्कुमार–माहेन्द्र स्वर्ग के द्विचरम पटल के (अन्तिम पटल के पूर्व पटल के) बलभद्र नामक इन्द्रक विमान पर्यन्त उत्पन्न होता है।

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंस मुदा।
पंचम चरिमतिमिस्से, मज्झे मज्झेण जायंते।।[12]

अर्थात् कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव सातवीं पृथ्वी के अवधिस्थान नामक इन्द्रक बिल में उत्पन्न होते हैं। जघन्य अंशों के साथ मरे हुए जीव पांचवी पृथ्वी के अन्तिम पटल के तिमिश्रनामक इन्द्रक बिल में उत्पन्न होते हैं। कृष्ण लेश्या के मध्यम अंशो के साथ मरे हुए जीव दोनों के (सातवीं और पाँचवीं नरक पृथ्वी के) मध्य स्थानों में यथा सम्भव योग्यतानुसार उत्पन्न होते हैं।

नीलुक्कस्ससमुदा पंचम अधिंदयम्मि अवरमुदा।
बालुक संपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते।।[13]

नीललेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव पाँचवीं पृथ्वी के द्विचरम पटल सम्बन्धी अन्ध्रनामक इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं। कोई–कोई पाँचवें पटल में भी उत्पन्न होते हैं। इतना विशेष और भी है कि कृष्णलेश्या के जघन्य अंशवाले जीव भी मरकर पाँचवीं पृथ्वी के अन्तिम पटल में उत्पन्न होते हैं। नीललेश्या के जघन्य अंश वाले जीव मरकर तीसरी पृथ्वी के अन्तिम पटल सम्बन्धी संप्रज्वलित नामक इन्द्रक बिल में उत्पन्न होते हैं। नीललेश्या के मध्यम अंशवाले जीव मरकर तीसरी पृथ्वी के संप्रज्वलित नामक इन्द्रक बिल के आगे और पाँचवी पृथ्वी के अन्ध्रनामक इन्द्रकबिल के पहले–पहले जितने पटल और इन्द्रक हैं इनमें यथायोग्य उत्पन्न होते हैं।

वरकाओदं समुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स।
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते।।[16]

कापोतलेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव तीसरी पृथ्वी के नौ पटलों में से द्विचरम–आठवें पटल सम्बन्धी संज्वलित नामक इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं। कोई–कोई अन्तिम पटल सम्बन्धी संप्रज्वलित नामक इन्द्रकबिल में भी उत्पन्न होते हैं। कापोतलेश्या के जघन्य अंशों के साथ मरे हुए जीव प्रथम पृथ्वी के सीमन्त नामक इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं। और मध्यम अंशों के साथ मरे हुए जीव प्रथम पृथ्वी के सीमन्त नामक इन्द्रकबिल से आगे और तीसरी पृथ्वी के द्विचरम पटल सम्बन्धी संज्वलित नामक इन्द्रकबिल के पहले तीसरी पृथ्वी के सात पटल, दूसरी पृथ्वी के ग्यारह पटल और प्रथम पृथ्वी के बारह पटलों में या धम्माभूमि के तेरह पटलों में से पहले सीमान्तक बिल के आगे सभी बिलों में यथायोग्य उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार छहों लेश्याओं में से उनके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट अंशों के द्वारा जीवों का चार गतियों में कहाँ–कहाँ तक गमन होता है यह बताया। उपरोक्त छहों लेश्याओं के स्वामी कौन–कौन हैं यह चर्चा भी प्रसंग प्राप्त है। अतः इसका वर्णन भी यहाँ किया जा रहा है :–

काऊकाऊकाऊ, णीला य णील किण्हा य।
किण्हा य परमकिण्हा, लेस्सा पढमादिपुढवीणं।।[15]

पहली धम्मा या रत्नप्रभा पृथ्वी में कापोतलेश्या का जघन्य अंश है। दूसरी वंश या शर्करा प्रभा पृथ्वी में कापोतलेश्या का मध्यम अंश है। तीसरी मेघा बालुका प्रभा पृथ्वी में कापोतलेश्या का उत्कृष्ट अंश और नील लेश्या का जघन्य अंश है। चौथी अंजना या पंकप्रभा पृथ्वी में नीललेश्या का मध्यम अंश है। पाँचवीं अरिष्टा या धूमप्रभा में नीललेश्या का उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्या का जघन्य अंश हैं। छठीं मघ्वी या तमप्रभा पृथ्वी में कृष्णलेश्या का मध्यम अंश है। सातवीं माघवी या महातमप्रभा पृथ्वी में कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट अंश है।

णरतिरियाणं आद्यो इगिविगलेतिण्णि चउ असण्णिस्स।
सण्णिअपुण्ण गमिच्छे सासंण सम्मे असुहतियं।।[16]

मनुष्य और तिर्यंचों के सामान्य से छहों लेश्याएँ होती हैं। परन्तु विशेष रूप में एकेन्द्रिय और विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) जीवों के कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ ही होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के कृष्ण आदि चार लेश्याएँ होती हैं, क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय कापोतलेश्या वाला जीव मरकर पहले नरक में जाता है तथा तेजोलेश्या सहित मरने से भवनवासी और व्यन्तर देवों में उत्पन्न होता है। कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्या सहित मरने से यथायोग्य मनुष्य या तिर्यंचों में उत्पन्न होता है। संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच तथा अपि शब्द से असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक और सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृत्यपर्याप्त तिर्यंच मनुष्य तथा भवनत्रिक इतने जीवों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ ही होती हैं। तिर्यंच और मनुष्य उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों के सम्यक्त्व काल के भीतर विशिष्ट संक्लेश के हो जाने पर भी ये तीन अशुभ लेश्याएँ नहीं हुआ करतीं। किन्तु उसकी विराधना करके सासादन बनने वालों के अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्याएँ ही हुआ करती हैं।

भोगापुण्णगसम्मे काउस्सजहण्णियं हवे णियमा।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा।।[17]

भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टि जीवों में कापोतलेश्या का जघन्य अंश होता है तथा सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त अवस्था में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं।

अयदो त्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्साहु देसविरदतिये।
तत्तो सुक्कालेस्सा अजोगिठाणं अलेस्स तु।।[18]

अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त छहों लेश्याएँ होती हैं तथा देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत इन तीन गुणस्थानों में तीन शुभ लेश्याएं ही होती हैं। किन्तु इसके आगे अपूर्वकरण से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त एक शुक्ललेश्या ही होती है और अयोगकेवली गुणस्थान लेश्या रहित है अर्थात् समस्त सिद्ध राशि अलेश्या–लेश्यारहित है।

सन्दर्भ :

1. पंचसंग्रह, प्राकृत, गाथा 1/142–43।
2. धवला, 1/1.1.4, 149/6।
3. पंचाध्यायी, गाथा 1145।
4. गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा 509।
5. वही, गाथा 510।
6. वही, गाथा 512–14।
7. वही, गाथा 515।
8. वही, गाथा 516।
9. वही, गाथा 517।
10. वही, गाथा 518।
11. वही, गाथा 521।
12. वही, गाथा 524।
13. वही, गाथा 525।
14. वही, गाथा 526।
15. वही, गाथा 529।
16. वही, गाथा 530।
17. वही, गाथा 531।
18. वही, गाथा 532।

*****